खण्ड–5, अंक–1, वर्ष–2017, मु0पृ0 165–167, D.O.I. : 10.22445/avsp.v5i01.9874 वैज्ञानिक लेख

आश्रम जीवन प्रणाली

अनुराधा विनायक
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ–226001, उ0प्र0, भारत
vinayaksh1307@gmail.com

प्राप्त तिथि–16.06.2017, स्वीकृत तिथि–23.09.2017

सार– भारतीय धर्म एवं दर्शन की प्रासंगिकता सर्वविदित है। भारतीय जीवन प्रणाली उत्कृष्टतम है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त, उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर रहने की व्यवस्था ''आश्रम'' है। यह 'श्रम्' धातु से बना है जिसका अर्थ है परिश्रम करना। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास चार आश्रम है, जिनमें आयु के विभिन्न स्तरों पर व्यक्ति जीवन व्यतीत करता हुआ निरन्तर विकसित होता है।

बीज शब्द– आश्रम, श्रम, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, विकास।

Ashram life style

Anuradha Vinayak
Associate Professor and Head
Department of Ancient Indian History and Archaeology
B.S.N.V.P.G. College, Lucknow– 226001, U.P., India
vinayaksh1307@gmail.com

Abstract- The relevance of Indian religion and philosophy is established. Indian life style is supreme. Ashram theory is a regular process for the achievement of best in the life from birth till death. Ashram is derived from the word 'Shram', means to do labour. There are four ashrams Bramhacharya, Grihastha, Vanprastha and Sanyasa, through working on ashram theory one gets upliftment on various stage in one's life at the different stages of one's age.

Key words– Ashram, Shram, Bramhacharya, Grihastha, Vanprastha, Sanyasa, development.

1. **प्रस्तावना–** विश्व चिन्तन के स्रोत का आधार भारतीय धर्म एवं दर्शन है। आज भी इसकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता सर्वविदित है। ऋषियों द्वारा प्रवर्तित धर्म विज्ञान सम्मत एवं कल्याणकारी है। धर्म का युगानुकूल समाधान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है अन्यथा उसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। भारतीय जीवन–प्रणाली उत्कृष्टतम है। इसी को आधार मान कर समस्त विश्व में शान्ति लाई जा सकती है। जीवन के विभिन्न आयु स्तरों पर कोई भी कड़ी टूटने न पाये, यही सार्थक प्रयास हमें निरन्तर करते रहना है। वस्तुतः जन्म से मृत्यु पर्यन्त उत्तरोतर विकास की ओर अग्रसर रहने की व्यवस्था को ''आश्रम'' की संज्ञा प्रदान की गई।[1]

2. **उत्पत्ति–** 'आश्रम' शब्द संस्कृत के 'श्रम' धातु से बना है जिसके अनुसार आश्रम का अर्थ है–

1. वह स्थान जहाँ श्रम किया जाये।
2. वह क्रिया जिसके द्वारा श्रम किया जाये।
3. आश्राम्यन्ति अस्मिन् इति आश्रम– अर्थात् एक ऐसा जीवन स्तर जिसमें व्यक्ति खूब श्रम करता है।

3. शब्द की ऐतिहासिक व्याख्या एवं वेदिक विश्लेषण– शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से आश्रम का अर्थ रूकने या विश्राम करने की जगह है। भार्गव हिन्दी शब्दकोष(पृ0 58) के अनुसार आश्रम का अर्थ है ऋषि मुनि का वास स्थान, तपोवन, मठ, विश्राम स्थान। शास्त्रोक्त चार प्रकार धर्म विशेष चारो आश्रम को ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित माना गया है और ब्रह्म तक पहुँचने वाली सीढ़ी बताया गया है। भारतीय लेखकों ने आश्रमों के सिद्धान्त एवं व्यवहार के विषय में अपने मत दिये हैं। आश्रम के सिद्धान्त का प्रतिपादन व्यक्ति के लिये था। व्यक्ति का आध्यात्मिक लक्ष्य क्या है उसे अपने जीवन को किस प्रकार चलाना है, अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये क्या तैयारियाँ, किस प्रकार से करनी हैं। चारो आश्रमों के उद्देश्य के सम्बन्ध में महाभारत में व्यास जी कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति इन आश्रमों में धर्मों का रागद्वेष से शून्य होकर विधि–पूर्वक अनुष्ठान कर ले तो वह परब्रह्म परमात्मा को तत्व से जानने का अधिकारी हो जाता है। उपनिषद में चारो आश्रमों की व्याख्या पाई जाती है।[2] आश्रम सम्बन्धी नियम भी हिन्दू समाज व्यवस्था के जीवन के लिये उतने ही आवश्यक थे जितने

जात–पात के नियम। आश्रमों के विषय में मनु के मतानुसार मानव जीवन एक सौ वर्ष का होता है– शतायुर्वे पुरूषः। इस आयु को हम चार भागों में बाँटते हैं। इसके अनुसार 25–25 वर्ष की आयु एक आश्रम में निहित है परन्तु इतनी आयु ही रखना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। आश्रमों की संख्या चार बताई गई है[3]– 1. ब्रह्मचर्य आश्रम, 2. गृहस्थ आश्रम, 3. वानप्रस्थ आश्रम, 4. सन्यास आश्रम।

प्रथम आश्रम में व्यक्ति गुरू आवास परिसर में रहकर विद्याध्ययन करता है(मनु–4/1)। दूसरा आश्रम गृहस्थ है जिसमें विवाह के उपरान्त सन्तानोत्पत्ति करता है एवं पूर्वजों के ऋण से मुक्ति पाता है(मनु– 5/169)। तीसरा आश्रम वानप्रस्थ है जब व्यक्ति वन में रहते हुये कर्तव्यों का निर्वाह करता है(मनु 6/1–2)। अन्तिम आश्रम सन्यास है। ब्रह्मचर्य का विवरण तैत्तरीय संहिता, शतपथब्राह्मण तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों में हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद(2/23/1) में स्पष्ट संकेत है कि धर्म के तीन विभाग है जिनमें यज्ञ, अध्ययन एवं दान ये तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ की ओर संकेत करते हैं। मुण्डकोपनिषद्(1/2/11) में सन्यास का नाम लिया गया है। जाबालोनिषद[4] में आया है कि जनक ने याज्ञवल्क्य से सन्यास की व्याख्या करने को कहा। अतएव यह स्पष्ट है ब्रह्मचर्य में व्यक्ति को अनुशासन एवं संकल्प के अनुसार जीवन यापन करना पड़ता था। यह आठ से बारह वर्ष के वय से आरम्भ होता है। इसमें विद्यार्थी अपने गुरू के यहाँ एक निश्चित समय तक रहता है। गौतम शाखा ने ब्रह्मचर्य आश्रम के समस्त नियमों को चार वर्गों में विभक्त किया है–

1. मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य का दृढ़ता से पालन करना।
2. भोजन और वस्त्र में सादगी रखना।
3. गुरू के प्रति आज्ञाकारिता का भाव रखना और उसके समस्त आदेशों को श्रद्धा के साथ पालन करना।
4. गुरू से विधि पूर्वक अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना।

जब गुरू आदेश दे, तदुपरान्त गुरू को दक्षिणा देकर विधिपूर्वक समावर्त्तन संस्कार सम्पन्न करे। इस प्रकार आयु का 1/4 हिस्सा ब्रह्मचर्य आश्रम के लिये निश्चित किया गया। ब्रह्मचारी की दो श्रेणियाँ बताई गई है– (क) उपकुर्वाण– जो गुरू दक्षिणा देकर घर लौटते थे, (ख) नैष्ठिक– आयुपर्यन्त ब्रह्मचर्य–व्रत लेकर विद्याध्ययन करने वाले।

जीवन में 25–50 वर्ष तक की आयु को गृहस्थ आश्रम के रूप में जाना गया। मनुस्मृति में गृहस्थ आश्रम को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया गया है।[3] जैसे सब जीव वायु के आश्रय से जीते हैं, इसी प्रकार गृहस्थ के सहारे सब आश्रम जीते हैं। गृहस्थ आश्रम में रहते हुये पंच महायज्ञों को सम्पादित करना अनिवार्य बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण (11/5/6/1) में वर्णन प्राप्त होता है– केवल पाँच ही महायज्ञ हैं–

(1) ब्रह्मयज्ञ (2) देवयज्ञ (3) पितृयज्ञ (4) मनुष्य यज्ञ (5) भूत यज्ञ।

उपर्युक्त पंच महायज्ञों का मुख्य उद्देश्य है विधाता, प्राचीन ऋषियों, पितरों, जीवों एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करना। ब्रह्मयज्ञ प्रतिदिन का वेदाध्ययन (या स्वाध्याय) है। देवयज्ञ का सम्पादन अग्नि में समिधा डालने से होता है(तैतिरीयारण्यक 2/) पितरों का श्राद्ध करना पितृयज्ञ है जीवों को भोजन का ग्रास या पिण्ड दिया जाता है उसे भूत यज्ञ एवं ब्राह्मणों या अतिथियों को भोजन कराया जाता है उसे मनुष्य या नृयज्ञ कहा जाता है। पंच महायज्ञ करने के परिणामस्वरूप नैतिकता प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ ही कृतज्ञता, सम्मान, उदारता सहिष्णुता तथा जियो और जीने दो का सिद्धान्त कार्यान्वित एवं फलित होते हुये दिखाई पड़ता है। यज्ञ सम्पादन से त्रिऋण से भी मुक्ति प्राप्त होती है। पितृ, देव, ऋषि, ऋण सभी पर है। सन्तानोत्पत्ति कर पितृऋण से, ब्रह्मयज्ञ एवं वेदाध्ययन कर देव और अन्य यज्ञों के सम्पादन से ऋषि ऋण से उऋण हुआ जा सकता है। गृहस्थ ही अन्य आश्रमों में रहने वाले व्यक्तियों को धन द्वारा सहायता प्रदान करते हैं। वानप्रस्थ आश्रम के अन्तर्गत व्यक्ति वन मे रहता है। मनु के अनुसार (6/2) जब गृहस्थ अपने शरीर पर झुर्रियाँ देखे उसके बाल पक जाये और जब उसके पुत्रों के पुत्र हो जाये तो उसे वन की ओर प्रस्थान करना चाहिये। वानप्रस्थ के लिये वैखानस शब्द भी प्रयोग किया गया। बौधायन धर्म सूत्र (3/3) में वानप्रस्थों के प्रकार निम्न बताये गये है–

(क) पचमानक– जो पका हुआ भोजन या फल खाते है।
(ख) अपचमानक– जो अपना भोजन पकाते नहीं।

पचमानकों में सर्वारण्यक वैतुषिक वे है जो केवल फलों पर निर्भर रहते हैं। सर्वारण्यक में दो प्रकार है– इन्द्रावसिक्त (जो लता, गुल्म आदि लाकर पकाते हैं उनसे अग्निहोत्र करते हैं और उन्हें अतिथि को समर्पित कर स्वयं खाते हैं। अपाच मानक के पाँच प्रकार है–

(1) उन्मज्जक– जो भोजन रखने के लिये लोहे या पत्थर का साधन नहीं रखते।
(2) प्रवृताशिनः– जो बिन पात्र लिये केवल हाथ में ही लेकर खाते हैं।
(3) मुखेनादायिनः– जो बिन हाथ के प्रयोग के पशुओं की भाँति केवल मुख से ही खाते हैं।
(4) तोयाहार– जो केवल जल पीते हैं।

(5) वायुभक्ष– जो पूर्णरूप से उपवास करते हैं।

वस्तुतः वानप्रस्थ त्याग और आत्मसुधार का आश्रम है एवं जीवन से सम्बन्धित गूढ़तम रहस्यों पर विचार करने का अवसर है। जीवन के अन्तिम भाग में जब 70 या उससे अधिक आयु का हो चुका हो तब सन्यास ग्रहण किया जा सकता है। सन्यास के अन्तर्गत तप को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। तपस्वियों के लिये केवल चार प्रकार की क्रियायें बताई गई हैः– (1) ध्यान, (2) शौच, (3) भिक्षा, (4) एकान्तशीलता।

सब प्रकार से आत्मा का आश्रय ले, सन्यासी आत्मज्ञान के भाव से विषय भावों की ओर उदासीन हो जाता है, तब यहाँ भी(संसार में) और मृत्यु के उपरांत भी अक्षय सुख प्राप्त करता है।[4]

4. **निष्कर्ष–** ऋषियों, मनीषियों एवं विभिन्न विचारकों द्वारा 'आश्रम' को मनुष्य की नैसर्गिक वृत्तियों को परिमार्जित करने एवं सन्तुष्ट करने की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में प्रस्तुत किया है।[5] यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति को आत्माभिव्यक्ति और आत्म विस्तार करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। अधिकार और कर्तव्य, स्वार्थ और परमार्थ, रूढिवादिता का त्याग और आशा का संचालन, बन्धन से मुक्ति की संभावनाओं का प्रसार होता है।[6] समाज प्रगति के पक्ष पर आरूढ होता है। सकारात्मक धारणायें बनाने का आरम्भ होता है। समयानुसार परिवर्तन सभी क्षेत्रों में होता है पर उनका परिभार्जन किया जाना आज की महती आवश्यकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी आयु के विभिन्न स्तरों पर जीवन जीने का अर्थ महत्व समझना परम आवश्यक है। जीवन के मूलभूत नियम दृष्टिगोचर होते हैं।[7] मन में कामनाओं का उठना स्वाभाविक है, उनकी पूर्ति भी आवश्यक है परन्तु उनका आधार एवं पूर्णता व्यवस्थित रूप से होना चाहिये। आश्रम उसी आधार को क्रियान्वित करने का माध्यम है जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग के सभी आयु स्तर पर जीवन व्यतीत करने वाले प्राणियों को निरन्तर परिभार्जन करने का प्रगति करने का सुअवसर प्राप्त होता रहता है।[8,9] आश्रम संवेदना की संजीवनी प्रदान करने की एक स्तुत्य व्यवस्था है जिससे सकारात्मकता एवं ग्रहणशीलता के गुणों का विकास होता है।

सन्दर्भ

1. हास्टिंग्स, जेम्स(1908–1922–196) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स आर्ट ऑन आश्रम।
2. ब्रह्मचर्य परिसमाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनौ भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।
– बौधायन धर्म सूत्र 2/10/2 एवं 18, श्वेताश्वरोपनिषद्–6/21।
3. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।
–बृहदारण्यक उपनिषद्(4/4/22)।
4. मनुस्मृति, अध्याय 6।
5. मुखर्जी, राधाकुमुद(1975) हिन्दू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. चौधरी, राधाकृष्ण(1993) प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, नई दिल्ली।
7. त्रिपाठी, शम्भू रत्न(1963) भारतीय समाज और संस्कृति, किताब घर, दिल्ली।
8. काणे, पाण्डुरंग वामन(1980) धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
9. थापर, रोमिला(1990) ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पेन्गुइन पब्लि0 कं0।